International Journal of Fundamental & Applied Research
Website : www.ijfar.org ,(ISSN- 2320-7973 Volume-6 Issue -3+4 Month – June+July 2018 pp. (28 – 34)

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार योग की अवधारणा

जयप्रकाश शाक्य
महाराजा कॉलेज छतरपुर (मध्य प्रदेश)

विभिन्न योगियों में स्वामी विवेकानन्द ही ऐसे एकमात्र योगी हैं जिन्होंने योग को क्रियात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। स्वामी विवेकानन्द व्यक्तिगत मोक्ष प्राप्ति का उद्देश्य न लेकर सम्पूर्ण विश्व के मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखते थे। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''योग ही वह दर्शन है जिसके द्वारा ईश्वर प्राप्ति क्रियात्मक रूप से ज्ञात होती है, दूसरे शब्दों में योग सीखना नहीं बल्कि करना है।''[1] वे मानते हैं कि निःस्वार्थ भावना से ईश्वर समन्वय ही योग है। विवेकानन्द के अनुसार ''वहिर्विज्ञान के अन्तर्गत बाह्य विषयों पर मन को एकाग्र करना पड़ता है तथा अन्तर्विज्ञान के अन्तर्गत मन की गति को आत्मा की ओर उन्मुख करना पड़ता है। मन की इस एकाग्रता को योग कहते हैं।''[2] वे कहते हैं कि ''न प्रजमा धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानूशः''[3] अर्थात् न तो सन्तति द्वारा और न सम्पत्ति द्वारा बल्कि त्याग द्वारा ही अमरत्व की प्राप्ति होती है। योग ही वह साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति समस्त बन्धनों से मुक्त होकर ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति करता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सम्पूर्ण विश्व या प्रकृति की उन्नति करना ही योग है इसके लिए मन की एकाग्रता आवश्यक है। उन्होंने समस्त विश्व की उन्नति के लिए चार क्रियात्मक आध्यात्मिक योग मार्ग बताये हैं।

1. कर्मयोग 2. ज्ञानयोग 3. राजयोग
4. भक्तियोग

1. <u>कर्मयोग</u> –स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''निस्वार्थ कर्म द्वारा मानव जीवन के चरम लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करना ही कर्मयोग है।''[4] कर्मयोग एक धर्म एवं नीतिशास्त्र है। कर्म व्यक्ति जीवन पर्यन्त करता है और इसे ही वह अपना कर्त्तव्य समझता है क्योंकि यह उसके लिए कल्याणप्रद है और इसी के द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति होती है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि ''जिस कर्म द्वारा हम भगवान की ओर आकृष्ट होते हैं उसे सत्कर्म कहते हैं और उसी कर्म को करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं और जिस कर्म द्वारा पतित होते है उसे असत् कर्म कहते हैं उसे करना अपना कर्त्तव्य नहीं समझते हैं।''[5] वे मानते हैं कि कर्त्तव्य वही श्रेष्ठ होता है। जिसे बखूबी निभाया जाये। कोई भी कर्म उच्च या नीच नहीं होता बल्कि उसे करने का ढंग ही उच्च या निम्न होता है। कर्त्तव्य तो सभी श्रेष्ठ होते हैं। उन्नति का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है कि जो कर्त्तव्य हमारे संमुख है पहले उसे किया जाये फिर धीरे–धीरे कर्त्तव्यों को करते हुए शक्ति का संचयन किया जाये और सर्वोच्च अवस्था प्राप्त की जाये। कर्म चाहे निंदित हो या अपवित्र परन्तु कर्त्तव्य सदैव महान् ही होता है। प्रत्येक कर्त्तव्य कोई न कोई योग अवश्य है। अनासक्त भाव से मनुष्य की अपनी अवस्था के अनुरूप कर्त्तव्य पालन से परम पद की प्राप्ति होती है। साधना काल में साधन में ही मन प्राण अर्पण कर कार्य करो क्योंकि उसकी चरम अवस्था का नाम ही सिद्धि है। कर्म को उपासना के रूप में करने से परम पद व दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। अनासक्त पुरुष को सभी कर्त्तव्यो में आत्मा को मुक्त करने कर शक्ति दिखती प्रतीत होती है। कर्त्तव्य तो कर्त्तव्य ही होता है। अतः प्रत्येक कर्त्तव्य को सचेत होकर निभाना चाहिए। प्रत्येक कर्म को अपना कर्त्तव्य समझकर करने से आगे का रास्ता प्रशस्त हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द मानते थे कि हमारा कर्त्तव्य है कि दुर्बल के प्रति सहानुभूति रखें तथा अन्यायी के प्रति भी प्रेम रखें। मानव जितना अधिक शान्त होगा उसके द्वारा किये गये कार्य उतने ही श्रेष्ठ होंगे। यदि संसार में रहकर अर्थात् गृहस्थाश्रम में रहते हुए मोक्ष प्राप्ति करना है तो सदैव दूसरों के लिए संसार छोडने

Corresponding Author : email :

International Journal of Fundamental & Applied Research
Website : www.ijfar.org ,(ISSN- 2320-7973 Volume-6 Issue -3+4 Month – June+July 2018 pp. (28 – 34)

को तैयार रहो। यदि सन्यासी बनकर मुक्ति प्राप्त करना है तो धन, यश, सौन्दर्य तथा अधिकार की ओर न देखो। विवेकानन्द कहते हैं कि आध्यात्मिक बल ही सर्वोत्कृष्ट है क्योंकि इसके द्वारा मानव को समस्त दुःख व क्लेश से छुटकारा मिलता है। समस्त दुःख व क्लेश का मुख्य कारण है सृष्टि में व्याप्त अज्ञानता।''[6] इस अज्ञानता को बौद्विक सहायता से दूर किया जा सकता है। अज्ञानता के दूर होने पर सम्पूर्ण सृष्टि ज्ञान से आलोकित हो जाती है और सम्पूर्ण मानव समुदाय में आध्यात्मिक ज्ञान जागृत होता है। सभी मनुष्यों के ज्ञानी होने पर और सभी ज्ञानियों में आध्यात्मिक बल का समावेश हो जाने से दुःख व क्लेश का स्वतः ही मानव के ऊपर प्रभाव नष्ट हो जाता है।

श्रीमद् भगवदगीता में ''मानव को कर्मरत रहने का उपदेश दिया गया है यह कर्म सत् व असत् दोनो का मिश्रित रूप है।''[7] स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि ''जो शुभ कर्मो में भी अशुभ तथा अशुभ कर्मो मे भी कुछ न कुछ देखते हैं वास्तव में वही कर्म का रहस्य समझते हैं।''[8] कर्म चाहे सत् हों या असत् दोनो ही आत्मा के लिए बन्धन हैं। अतः समस्त कर्मो से मुक्ति प्राप्त करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार पैर में कांटा लगने से दूसरे कांटे से उसे निकाला जाता है फिर दोनों को फेंक दिया जाता है और मनुष्य को संतुष्टि प्राप्त होताी है उसी प्रकार शुभ एवं अशुभ जैसे बन्धनों को भी एक दूसरे के द्वारा हटाकर अर्थात् दोनों से छुटकारा प्राप्त करके ही मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है।''[9] कर्म सदैव करते रहो लेकिन निःस्वार्थ भाव से करो। निःस्वार्थ भाव से किया गया कर्म प्रेम पर आधारित होता हैं स्वामी विवेकानन्द मानते हैं कि चाहे जितनी ही आपत्तियां क्यों न उठानी पड़े परन्तु फिर भी कर्म करते रहो और कोई तर्क–वितर्क न करो। कर्म भी स्वयं के लिए न करके सदैव दुसरों के लिए करो। आत्म त्याग ही कर्मों का उददेश्य है और यही कर्मयोग का लक्ष्य है।''[10] प्रत्येक कर्त्तव्य और कर्त्तव्यनिष्ठा भगवद् पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है। निष्कार्य कर्म और अनासक्त होकर कर्म करने से परम आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति होती है। निःस्वार्थ कर्म द्वारा मानव के चरम लक्ष्य मुक्ति की प्राप्ति ही कर्मयोग है।

समस्त नैतिक शिक्षाओं का लक्ष्य अनन्त विकास को प्राप्त करना है। नैतिकता और निःस्वार्थता के बाद ही मुक्ति प्राप्त होती है। अतः जो स्वार्थी हैं वे अनैतिक हैं और जो निःस्वार्थी है वे नैतिक है। कर्मयोगी का अपना कोई सिद्धान्त नहीं होता है बल्कि वह तो सदैव अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही कार्यरत रहता है। वह प्रत्येक क्षण ईश्वर साक्षात्कार के लिए बेचैन रहता है। सच्चा कर्मयोग का त्याग नहीं बल्कि कर्म में त्याग का भाव रखता है। इसलिए विवेकानन्द जी कहते हैं कि ''सृष्टि में रहकर कौशल से कर्म करते रहो और फिर बाहर निकल आओ यानी सृष्टि में रहकर अपने सभी कर्त्तव्यों को निभाओ फिर मुक्ति प्राप्त करो यही कर्मयोग है।''[11] कर्मयोग के अनुसार मोक्ष प्राप्ति कर्म के द्वारा ही करना चाहिए।

संक्षेप में, स्वामी विवेकानन्द मानते थे कि वही व्यक्ति कर्मयोगी है जो निःस्वार्थ भावना से अनासक्त होकर सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण के लिए समस्त मानव जाति को प्रेरित करता है और स्वयं भी कर्म करता है। मुक्ति प्राप्त करने के लिए मानव को सृष्टि के बाहर जाना होगा अर्थात् समस्त बन्धनों से अनासक्त होना पड़ेगा क्योंकि संसार में आसक्त रहकर मुक्ति नहीं मिल सकती। समस्त बन्धनों से छुटकारा पाने पर ही मुक्ति संभव है। शास्त्रो के अनुसार दो ही उपाय ऐसे हैं जिनके द्वारा समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्ति मिल सकती है। पहला नेति–नेति अर्थात् निवृत्ति का मार्ग। यह मार्ग कठिन है क्योंकि सिर्फ इच्छा शक्ति सम्पन्न तथा उन्नत महापुरुषों के लिए ही साध्य है। दूसरा है इति–इति अर्थात् प्रवृत्ति का मार्ग। यह मार्ग सर्वाधिक प्रचलित है। इसमें सर्वस्व का त्याग करना पड़ता है। प्रत्येक कर्म को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देना चाहिए। जीवन की जो इच्छा रखते हैं उन्हें मृत्यु की भी इच्छा रखनी पड़ती है। अतः मृत्यु से छुटकारा प्राप्त करने के लिए एकमात्र उपाय जीवन के प्रति आसक्त न होना है। श्रेष्ठ महापुरुष अपने कर्त्तव्य को शुद्ध, सात्विक तथा प्रेम से द्रवभूत

Corresponding Author : email :

International Journal of Fundamental & Applied Research
Website : www.ijfar.org ,(ISSN- 2320-7973 Volume-6 Issue -3+4 Month – June+July 2018 pp. (28 – 34)

होकर करते हैं। कर्म के बाद कभी भी यश व धन की प्राप्ति की कामना नहीं करते बल्कि सबके कल्याण व मोक्ष प्राप्ति की कामना करते हैं और क्रियात्मक रूप से सबको लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रेरित भी करते हैं। ''कर्मों के समस्त कर्मफलों को त्याग देने, दूसरों के प्रति भला करने से पूर्ण अनासक्त प्राप्ति होती है तभी मानव पूर्ण मुक्ति को प्राप्त करते हैं। यह मुक्ति ही कर्मयोग का आदर्श या चरम लक्ष्य है।''[12]

ज्ञानयोग :– कर्मयोग के तार्किक आधार को ज्ञानयोग कहते हैं।''[13] इसमें ईश्वर एवं आत्मा का सम्मिलन है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि ''ज्ञानयोग के द्वारा हम सभी के भीतर से प्रभु ही इस जगत में प्रकाशित हो रहा है अतः सृष्टि में व्याप्त सभी कुछ उस एकमात्र ईश्वर की ही अभिव्यक्तियाँ है।''[14] ज्ञानयोग ही एकमात्र ऐसा योग है जिसके द्वारा हमें सृष्टि की सभी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञानयोगी सबके कल्याण की भावना रखते हैं। ज्ञान लाभ का एकमात्र उपाय एकाग्रता है। ''ज्ञानी वही है जिन्होंने सत्य को प्रत्यक्ष कर लिया है और उसके साथ तादात्पय स्थापित कर लिया है अर्थात् एकरूप हो गये हैं।''[15] ज्ञानयोग को समझने के लिए निम्नांकित बिन्दुओं को समझना आवश्यक है–

1. **माया और मुक्ति** :– जन्म–मृत्यु की प्रक्रिया ही माया है। श्वेताश्वरोपनिषद में कहा गया है कि ''मायां तु प्रकृतिं विधान्मायिनं तु महेश्वरम्'' अर्थात् माया को ही प्रकृति समझो और मायी को महेश्वर जानो। आकर्षण सदैव माया के प्रति होता है। माया त्रिगुणात्मिका है। त्रिमुणमयी माया बडी मुश्किल से पार की जाती है और जो ईश्वर की शरण में आते हैं वे इस माया को पार कर जाते है। माया और प्रकृति दोनों एक ही प्रभु के दो रूप हैं। माया और प्रकृति मुक्ति प्राप्त करने के लिए मानव का आशा स्थल है। वेदान्त कहता है कि सम्पूर्ण सृष्टि के पीछे एक आत्मा है जो माया के अधीन नही है। सत्य की प्राप्ति कभी भी प्रकृति में नही हो सकती क्योंकि सत्य तो स्वयं ही हमारे अन्दर विधमान है। अतः मुक्ति और स्वतंत्रता दोनों ही मानव हृदय में विधमान है। वस्तुतः आत्मा ही ब्रह्मस्वरूप है जो एक रस, पूर्णसत्य और सदा मुक्त है।

2. **ब्रह्म और जगत** :– ब्रह्म गतिहीन है वह कभी भी परिवर्तित नही होता परन्तु जगत परिवर्तनशील है क्योंकि वह देश काल निमित्त पर आधारित है। जहाँ ब्रह्म है वहाँ देश काल निमित्त नही हो सकता क्योंकि वहाँ न मन है और न विचार। ब्रह्म का अवनत रूप ही देश–काल निमित्त जगत है। जगत में ही सभी प्रकार के बाह्य और आन्तरिक विचारों का आदान–प्रदान होता है ब्रह्म में नही। स्वामी विवेकानन्द कहते है कि ''मानव जन्म से ही अपने कार्यो को देश–काल निमित्त के अनुसार करता है और अन्त में ब्रह्म के दर्शन प्राप्त करता है।''[16] ईश्वर ज्ञात और अज्ञात से ऊँची अवस्था है वह मानव शरीर के हृदय में विद्यमान है परन्तु उसका कभी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। ब्रह्म और आत्मा एक है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही वस्तु का अस्तित्व है वह है ब्रह्म। ''ज्ञानियों को चाहिए कि वे अज्ञानी कर्म में आसक्त व्यक्तियों मे बुद्धि भेद न करें। विद्वान व्यक्ति को स्वयं मुक्त रहकर लोगों को सब प्रकार के कर्मों में नियुक्त करना चाहिए।

3. **अमरत्व** :– सृष्टि परिवर्तनशील है। यह परिवर्तन वृत्ताकार होता है। पहले वृक्ष से बीज बनता है और फिर बीज से वृक्ष बनता है। इसी प्रकार मानव का जन्म–मरण होता रहता है। इसी वृत्तरूप को क्रमविकासवाद का सिद्धान्त कहते हैं। आत्मा भौतिक शक्ति न होकर चैतन्य और अमर है। अमरत्व प्राप्ति की इच्छा रखने वाले ज्ञानी व्यक्ति विषयों से अपने की दूर कर अपनी अन्तरात्मा की ओर देखते है। स्वामी विवेकानन्द कहते है ''जो व्यक्ति स्वयं में विश्वास रखता है वही अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।''[18]

4. **बहुत्व मे एकत्व** :– आत्मा अनन्त है। आत्मा की खोज अनन्त में ही होती है। आत्मा सदैव जागृत रहती है। आत्मा अमर है और शरीर हमेशा मृत्यु को प्राप्त होता है। आत्मा एक है परन्तु माया के कारण अनेक प्रतीत होती है। आत्मा पर हीं संसार आश्रित है। इसी आत्मा

Corresponding Author : email :

International Journal of Fundamental & Applied Research
Website : www.ijfar.org ,(ISSN- 2320-7973 Volume-6 Issue -3+4 Month – June+July 2018 pp. (28 – 34)

में ब्रह्म के दर्शन होते हैं। सत्यमार्ग का अनुसारण करने वाला ही एकत्व का दर्शन करता है। जिस प्रकार कड़ाही मे तेल डालने से अनेक बुलबुले उठते है और अन्त में एकरूप हो जाते है उसी प्रकार सभी प्राणी एक ब्रह्म में अन्तर्भूत हो जाते है और बहुत्व में एकत्व स्थापित हो जाता है।

5. वस्तुओं में ब्रह्मदर्शन :– स्वामी विवेकानन्द सम्पूर्ण जगत की वस्तुओं में एक ही ब्रह्म के दर्शन करते थे। वे कहते है कि ''मैं मस्तिष्कवान होने की अपेक्षा श्रेष्ठ हृदय होना चाहता हूँ जिससे सभी के भावों को जानकर उसके अनुरूप स्वयं को बनाकर सबके साथ सत्कर्म कर सकूँ।''[19] वे सभी वस्तुओं में ब्रह्म का दर्शन करना चाहते थे। वे कहते है कि यदि मानव सर्वत्र ईश्वर का आभास मात्र ही करे तो वह कभी भी अपने को दुःखी महसूस नहीं करेगा।''[20] अज्ञानी व्यक्ति को प्रकृति में अनेक रूप देखता है जबकि ज्ञानी व्यक्ति को तो सर्वत्र ब्रह्म दर्शन ही दिखता है।

6. आत्मा का मुक्त स्वाभाव :– आत्मा का कोई आकार नही है वह मुक्त स्वाभाव है। विवेकानन्द कहते है कि ''आत्मामुक्तस्वाभाव है। सत, चित और आनन्द आत्मा का ही स्वाभाव है। प्रकृति में आत्मा के विभिन्न रूप है।''[21] आत्मा के स्वाभाव को सत्य द्वारा जाना जा सकता है। विवेकानन्द जी कहते है कि ''ज्ञान सूर्य की किरणें जितनी उज्जवल होने लगती है। मोह उतना ही दूर भागता है। अज्ञान राशि ध्वंस होती जाती है और अन्त में एक समय ऐसा आता है जब सारा अज्ञान लुप्त हो जाता है और केवल ज्ञानसूर्य ही शेष रह जाता है।''[22]

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द अपने दर्शन में ज्ञानयोग की महत्ता का वर्णन करते हुए ज्ञानयोग को श्रेष्ठ योग के रूप में प्रतिपादित करते हैं। वे मानते हैं कि एक सच्चा ज्ञानी वही है जिसकी सारी इन्द्रियाँ संयत हो जाती है। इन्द्रिया मन को चंचल नहीं कर पाती है तभी योगी को अपना लक्ष्य प्राप्त होता है।

7. राजयोग :– राजयोग के आठ अंग है इसलिए इसे अष्टांग योग भी कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार जब तक किसी बात का प्रत्यक्ष न कर लो, उस पर विश्वास न करो''[23] राजयोग के अनुसार योगी का मुख्य लक्ष्य अन्तर्दृष्टि का विकास करना है। राजयोग में योग के आठ अंग माने गये हैं –

1. यम – इससे सम्पूर्ण मानव शरीर नियंत्रित होता है। साधना के प्रारंभ में यम का पालन अति आवश्यक है। यम पाँच प्रकार से सम्पन्न हो सकता है।

(अ) अहिंसा – मन वचन और कर्म से हिंसा न करना अहिंसा है।

(ब) सत्य – मन वचन और कर्म से सत्य निष्ठ होना।

(स) अस्तेय – मन वचन और कर्म से लोभ न करना।

(द) अपरिग्रह – मन वचन और कर्म से व्यर्थ दान ग्रहण न करना।

(य) ब्रह्मचर्य – मन वचन और कर्म से पवित्रता रखना।

2. नियम – शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान अर्थात् ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण नियम हैं।

3. आसन – स्थिरता और सुखपूर्वक शरीर की स्थिति आसन कहलाता है।

4. प्राणायाम – कुम्भक, पूरक और रेचक द्वारा प्राणवायु को वशीभूत करने के लिए श्वास प्रश्वास का नियमन करना प्राणायाम है।

5. प्रत्याहार – मन को बाहरी विषयों से विमुख कर अन्तर्मुखी करना प्रत्याहार है।

6. धारणा – किसी एक विषय पर मन की एकाग्रता धारणा है।

7. ध्यान – किसी एक विषय पर मन का निरन्तर चिन्तन ध्यान है।

8. समाधि – ज्ञानातीत अवस्था अथवा ज्ञानलोक की प्राप्ति समाधि है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अन्य योगों की अपेक्षा राजयोग के लिए शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक साधना की ज्यादा ही आवश्यकता होती है।

Corresponding Author : email :

International Journal of Fundamental & Applied Research
Website : www.ijfar.org ,(ISSN- 2320-7973 Volume-6 Issue -3+4 Month – June+July 2018 pp. (28 – 34)

राजयोग के लिए अष्टांग योग के साथ–साथ प्राणों के आध्यात्मिक स्वरूप पर अधिक ध्यान देना चाहिए। राजयोग यथार्थ धर्मविज्ञान है। विवेकानन्द कहते हैं कि ''राजयोग सारी उपासना, सारी प्रार्थना, विभिन्न प्रकार की उपासना पद्धति और समुदाय अलौकिक घटनाओं की युक्तियुक्त व्याख्या है।''[24]

राजयोग के उद्देश्य – योगाचार्य कहते हैं कि प्रत्येक धर्म पूर्वकालीन अनुभवों पर आधारित है। पूर्वकालीन अनुभवों के बगैर कोई भी धर्म नहीं टिक सकता। जिस विद्या के द्वारा ये अनुभूतियाँ होती है, उसे योग कहते हैं। ''[25] सत्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य सदैव लगा रहता है, सत्य ही मनुष्य को ज्ञान से प्रकाशित करता है। राजयोग सत्य प्राप्त करने के लिए व्यवहारिक उपाय और साधनों का उपयोग वैज्ञानिक तरीके से करना बताता है। सत्य को प्राप्त करने के लिए मन पर नियंत्रण आवश्यक है। मन संयमित होने पर शरीर पर शीघ्र नियंत्रण हो जाता है। अतः ईश्वर प्राप्ति के लिए मन व शरीर को एकमुखी होना आवश्यक है।

राजयोग के अनुसार यह बर्हिजगत अन्तर्जगत का ही विकास रूप है। अन्तर्जगत को कारण और बर्हिजगत को कार्य समझा जाता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''अन्तर्जगत कारण और बर्हिजगत कार्यरूप है।''[26] राजयोगी को भोजन संतुलित, पवित्र तथा समयानुकूल करना चाहिए। भोजन का मन से विशेष संबंध है। कहा जाता है कि ''जैसा खाये अन्न, वैसा होगा मन''। राजयोग श्रेष्ठतम योग है। इसलिए प्रत्येक साधक को राजयोग का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए।

भक्तियोग – निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज को भक्तियोग कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द मानते हैं कि जब ईश्वर का आश्रय लिया जाता है उसकी शरण ग्रहण की जाती है एवं स्वयं को भगवान में लीन किया जाता है तब वह भक्तियोग की अवस्था है, भक्ति सूत्र में नारद जी ने कहा है कि ''भगवान के प्रति उत्कट प्रेम ही भक्ति है।''[27] सांसारिक बन्धनों से विरक्ति के फलस्वरूप प्रेम का उदय होता है। भगवान की भक्ति के बाद सभी मनुष्य उसके प्रेम पात्र हो जाते हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है कि –

''मद्गुण श्रुतिमायेण मयि सर्वगुहाशये।
लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुसस्य हुदाहृतम।।''[28]

अर्थात् गंगा प्रवाह की गति जिस प्रकार समुद्र की ओर अप्रतिरूद्ध और स्वाभाविक होती है। उसी प्रकार मेरे गुणों को सुन, मुझ सर्वव्यापक के मन की जो अविच्छिन्न गति होती है वही भक्तियोग का लक्षण है।

भक्तिमार्ग ज्ञान और कर्म दोनों से श्रेष्ठ है।'' भक्ति स्वयं ही साध्य एवं साधनस्वरूप है।''[29] भक्ति योग ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल उपाय है। स्वामी विवेकानन्द का मत है कि ''भक्तियोग मार्ग तो सरल परन्तु इसक द्वारा फल देर से प्राप्त होता हे।''[30] भक्ति एक साधन है जिसमें हमें ईश्वर के दर्शन होते हैं। पराभक्ति ही ईश्वरीय अवस्था है। इस अवस्था में मनुष्य को सर्वत्र ईश्वर के दर्शन होते हैं। ईश्वर के प्रति आसक्ति ही भक्ति है। आध्यात्मिक अनुभूति के निमित्त किये जाने वाले मानसिक एवं शारीरिक प्रयत्न भक्ति है।

भक्तियोग का ध्येय – भक्तियोग का मुख्य ध्येय ईश्वर दर्शन है। ईश्वर के दर्शन के बाद मनुष्य को सर्वत्र ही ईश्वर का आनन्द का प्रकाश दिखाई देता है। भक्ति में वासनाओं का सम्पूर्ण त्याग करना होता है। स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि वासना का मदिरा पान कर सम्पूर्ण जगत मस्त हुआ है। जैसे दिन और रात एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही वासना और भगवान एक साथ नहीं रह सकते। अतः ईश्वर प्राप्ति के लिए वासना का त्याग परमावश्यक है।''[31]

भक्तियोग का लक्ष्य प्रत्यक्षानुभूति अर्थात् ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति है। प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए मन की एकाग्रता आवश्यक है। एकाग्रता इच्छा शक्ति के दौरान सम्पन्न होती है और इच्छा शक्ति विचार शक्ति एवं प्राणायाम के द्वारा वशीभूत होती है। अतः एकाग्र मन ही ईश्वर प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है।

Corresponding Author : email :

International Journal of Fundamental & Applied Research
Website : www.ijfar.org ,(ISSN- 2320-7973 Volume-6 Issue -3+4 Month – June+July 2018 pp. (28 – 34)

भक्ति के साधन – रामानुजाचार्य का मत है कि भक्ति की प्राप्ति विवेक, विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद और अनुढ़वर्ष से होती है।

(1) विवेक – विवेक का अभिप्राय सोच विचार कर आहार करना है। आहार सात्विक हो।

(2) विमोक – विमोक का अर्थ इन्द्रियो को विषयों की ओर रोकता है। यही साधना की नींव है।

(3) अभ्यास – आत्मसंयम का अभ्यास करना चाहिए।

(4) क्रिया – क्रिया यज्ञ की अवस्था है। पंच महाभूतों को नियमित रूप से अनुष्ठान करना ही क्रिया है।

(5) कल्याण – कल्याण का अभिप्राय–आन्तरिक एवं वाह्य पवित्रता है। रामानुज के अनुसार ''सत्य, सरलता,दया, अहिंसा, परद्रव्यलोभ, वृथाचिन्तन और अनिष्ठ आचरण का चिन्तन का त्याग ही कल्याण है।''[32]

(6) अनवसाद – अनवसाद का अर्थ बल है। बलहीन व्यक्ति साधना नहीं कर सकता है।

(7) अनुढ़वर्स – मन की शान्त अवस्था ही अनुढ़बर्स है इससे आध्यात्मिक अनुभूति होती है।

भक्त का वैराग्य – भक्तियोग उच्चतर प्रेम का विज्ञान है। प्रकृति में सर्वत्र प्रेम का रूप विद्यमान है चाहे वह विनाश के रूप में हो चाहे हर्षोल्लास के रूप में। प्रकृति के कण–कण में ईश्वर का प्रकाश प्रकाशित है। भक्त को संसार से वैराग्य होना चाहिए और सर्वत्र ईश्वर का दर्शन करना चाहिए।

भक्ति के अवस्था भेद – शांडिल्य सूत्र के अनुसार भक्ति तीन प्रकार की होती है।

(1) श्रद्धा – श्रद्धा का वास्तविक अर्थ प्रेम है। जहाँ प्रेम विद्यमान नहीं नहीं है वहाँ श्रद्धा नहीं होती है। प्रेम के साथ श्रद्धा उत्पन्न होती है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति ही हमारी श्रद्धा रखती है जैसे शिष्य गुरू के प्रति एवं भक्त ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखता है।

(2) प्रीति – प्रीति का अर्थ ईश्वरीय चिन्तन में आनन्द की प्राप्ति। सांसारिक दृष्टि से इन्द्रिय विषयों में आसक्त होना प्रीति है परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से भक्त का ईश्वर के प्रति चिन्तन ही प्रीति है।

(3) विरह – प्रेमी के अभाव में उत्पन्न होने वाला प्रेम विरह की अवस्था है। यह अवस्था बहुत ही मधुर है। भगवान श्रीकृष्ण के प्रति राधा का विरह जगजाहिर है। भक्त मुक्ति नहीं चाहता है। वह सदा सर्वदा ईश्वर का दर्शन चाहता है। प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पद तीनों ही भक्ति के रूप हैं।

स्वामी विवेकानन्द में एक भक्तियोगी के समस्त लक्षण उपस्थित थे, भक्ति की प्रथम सीढ़ी प्रेम है। प्रेम के द्वारा संसार पर विजय पायी जा सकती है और ईश्वर को भी। स्वामी विवेकानन्द ने कर्म योग, ज्ञानयोग, राजयोग और भक्तियोग की व्याख्या मानव स्वभाव की भिन्न्ता के आधार पर की है। समस्त योग विधियों का लक्ष्य ईश्वर–साक्षात्कार करना है।

सन्दर्भ सूची –

1. विवेकानन्द संचयन –पृ. 69
2. विवेकानन्द संचयन –पृ. 308
3. विवेकानन्द संचयन –पृ. 465
4. विवेकानन्द संचयन –पृ. 26
5. कर्मयोग, स्वामी विवेकानन्द पृ. 60
6. कर्मयोग, स्वामी विवेकानन्द पृ. 43
7. विवेकानन्द संचयन पृ. 36
8. कर्मयोग, स्वामी विवेकानन्द पृ. 89
9. विवेकानन्द संचयन पृ. 330
10. विवेकानन्द संचयन पृ. 44
11. कर्मयोग, स्वामी विवेकानन्द पृ. 138
12. कर्मयोग, स्वामी विवेकानन्द पृ. 126
13. विवेकानन्द संचयन पृ. 165
14. विवेकानन्द संचयन पृ. 166

Corresponding Author : email :

International Journal of Fundamental & Applied Research
Website : www.ijfar.org ,(ISSN- 2320-7973 Volume-6 Issue -3+4 Month – June+July 2018 pp. (28 – 34)

15. राजयोग विवेकानन्द पृ. 13
16. ज्ञानयोग विवेकानन्द पृ. 145–46
17. ज्ञानयोग विवेकानन्द पृ. 164
18. ज्ञानयोग विवेकानन्द पृ. 97
19. ज्ञानयोग विवेकानन्द पृ. 255
20. ज्ञानयोग विवेकानन्द पृ. 250
21. ज्ञानयोग विवेकानन्द पृ. 310
22. ज्ञानयोग विवेकानन्द पृ. 245
23. विवेकानन्द संचयन पृ. 82
24. राजयोग विवेकानन्द पृ. 68
25. विवेकानन्द संचयन पृ. 77
26. विवेकानन्द संचयन पृ. 83
27. भक्तियोग विवेकानन्द पृ. 3, नारद भक्ति सूत्र प्रथम अनुवाक द्वितीय अध्याय
28. विष्णु पुराण 1–20–19
29. नारद भक्ति सूत्र चतुर्थ अनुवाक् 30 सूत्र
30. विवेकानन्द संचयन पृ. 426
31. विवेकानन्द संचयन पृ. 359
32. भक्तियोग पृ. 59

Corresponding Author : email :